इक्कीसवीं सदी का भारत : तुलसी का प्रदेय

डॉ. रवीन्द्रनाथ मिश्र

इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर आज की दुनिया जैसे-जैसे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के स्तर पर एकीकृत होती जा रही है उससे यह चिंता आवश्यक है, कि कहीं आगे आने वाले परिवर्तन हमें अपनी सांस्कृतिक विरासत और जड़ों से दूर न कर दें। मोटर-कार, टेलीफोन, टी.वी., संगणक और इंटरनेट आदि हमारे जीवन के अभिन्न अंग बनते जा रहे हैं। परमाणु बमों के जखीरों से फूटता पल-पल, सम्प्रदाय और आतंकवादी घटनाओं से होने वाले नरसंहार, मंडल-कमंडल की राजनीति से बँटता हुआ समाज, सत्ता हस्तांतरण हेतु किये जा रहे षड्यंत्र से धूमिल होती राजनीति, गति सूचनाओं का विस्फोट, संगणकों का तूफानी आक्रमण, समाज के हर बिंदु से असहमति, विद्रोह नैतिकता की मर्मान्तक चीख आ रही है। इतना ही नहीं राजकुमार कुम्भज के शब्दों में कहें तो-

स्त्री-पुरूषों में संबंधों की चाह नहीं होगी,
बच्चे तो होंगे, लेकिन रिश्ते नहीं होंगे,
न कहीं पितृत्व
न कहीं, मातृत्व
और न कहीं भ्रातृत्व
संसार का इक्कीसवीं सदी में
इतना विकास हो चुका होगा,
कि विश्वास का, मटियामेट हो चुका होगा।'

हरिकृष्ण निगम का विचार है कि 'संगणकों की दिनचर्या में पूरी घुसपैठ, पराधीनता का दौर ला सकता है और शासन तंत्र का नियंत्रण और कड़ा हो सकता है। उस समय परिवार को बाँधने वाले धागे कच्चे सिद्ध होंगे। बच्चों के कृत्रिम जन्म के कारण शायद पाँच दशकों के भीतर माता-पिता शब्द अपने भावनात्मक और पारंपरिक अर्थ खो देंगे।'[2]

मानव की प्रकृति से की गई छेड़छाड़ को शुरू हुए दशकों बीत चुके हैं। आज स्थिति यहाँ तक पहुँच गई है कि भूजल के निचले स्तरों में रासायनिक द्रव्य या औद्योगिक उत्पृत की मिलावट बढ़ती जा रही है। परमाणविक कचरा, तेजाबी वर्षा, जनसंख्या वृद्धि और वायुमंडल में लगातार बढ़ रही कार्बन डाइआक्साइड के परिणामस्वरूप मनुष्य के लिए नया प्रदूषण संकट पैदा हो चुका है। बाढ़, सूखा, भूकंप और प्राकृतिक आपदाओं ने मनुष्य को हिलाकर रख दिया है। गुजरात की स्थिति इसका ज्वलंत उदारण है।

विश्वनाथ तिवारी का मानना है कि 'आज तमाम राजनीतिक शक्तियाँ, धार्मिक संस्थाएँ और व्यावसायिक संगठन, लोक कल्याण के नाम पर लगातार झूठ का प्रचार कर रहे हैं। चाहे तानाशाही की सेंसरशिप हो या आर्थिक उदारीकरण वाली व्यवस्था, दोनों में आज के जनसंचार माध्यम योजनानुसार लोगों को दिग्भ्रमित कर रहे हैं। ऐसे में रचनाकार के अलावा और किससे उम्मीद की जा सकती है? वही हमारी आस्था का केन्द्र रहा है।'[3]

इस विषम परिस्थिति में भारतीय जनमानस में बसे तुलसी के मर्यादा पुरूषोत्तम राम ही व्यक्ति-व्यक्ति की अन्तश्चेतना की सहज प्रवृत्तियों को उदीप्त एवं परिष्कृत कर उन्हें समष्टि चेतना के साथ सम्बद्ध कर 'सर्वजन हिताय' की ओर प्रेरित कर सकते हैं। तुलसी के मानस से प्रेरणा ग्रहणकर आज का थकाहारा इंसान जीवन जीने का संबल प्राप्त कर रहा है। जो कि जीवन-जगत के नाना-क्रियाकलापों का महाकाव्य है। इसमें कुछ ऐसे भी प्रसंग हैं जो कि आज की परिस्थितियों के अनुकूल नहीं हैं। इस संबंध में डॉ. राममनोहर लोहिया का मानना है कि 'तुलसी की रामायण में निश्चय ही सोना, हीरा, मोती बहुत है, लेकिन उसमें कूड़ा और उच्छिष्ट भी काफी है। इन दोनों को धर्म से इतना पवित्र बना दिया गया है कि भारतीय जन की विवेकदृष्टि लुप्त हो गई है।'[4]

यह सही है कि आज के भौतिक युग में मानस की परख मात्र भाववादी धार्मिक दृष्टि से न करके वैज्ञानिक दृष्टि से करना समीचीन होगा। क्योंकि अब 'आँख न मूंदू कान न ऊधूँ, ऊधो मन-नाहीं दस बीस', 'रामहि केवल प्रेमु पियारा', और 'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई' आदि का युग नहीं है। भौतिकता की आँच में बदलते सामाजिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यिक मूल्यों के अंतर्गत हमें मानस के मूल्यांकन की दृष्टि बदलनी होगी। धर्म का आवरण उठाकर गहराई से मानस की परख की जाये तो उनके धर्म में भी वैज्ञानिकता है। लोहिया का मत है कि 'आनंद, प्रेम और शांति का आह्वान तो रामायण में है ही, पर हिंदुस्तान की एकता जैसा लक्ष्य भी स्पष्ट है। सभी जानते हैं कि राम हिंदुस्तान के उत्तर-दक्षिण की एकता के देवता थे, तो पूर्व-पश्चिम एकता के देवता थे कृष्ण, और कि आधुनिक भारतीय भाषाओं का मूल-स्रोत रामकथा है।'[5] सच पूछिये तो तुलसी के राम, उनकी भक्ति और उनकी कविता-तीनों देश-प्रेम की भूमि पर स्थित हैं।

आज का मानव प्रकृति को नष्ट कर भौतिक सुविधाओं से लैश इमारतों के निर्माण में लगा हुआ है। तुलसी के राम राजमहल का परित्याग कर जंगल में निवास करते हैं। चित्रकूट तुलसी को बहुत प्रिय है क्योंकि यह उनके राम को प्रिय है। जहाँ पावन वन, सुहावने विहंग और मृग हैं।

सुर तरु सरिस सुभायँ सुहाए। मनहु बिबुध बन परिहरि आए।
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिविध बयारि बहइ सुख देनी।[6]

आज का सबसे बड़ा संकट पर्यावरण का है। जिसे तुलसी ने प्रकृति के विविध रूपों के चित्रण एवं उसके महत्व के माध्यम से व्यक्त किया है। इस समय राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यटकों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। ये पर्यटक महलों को छोड़कर समुद्र तटों, घास-फूस से बनी झोपड़ियों और होटलों में सुख का अनुभव कर रहे हैं।

तुलसी की रचनाधर्मिता का मूल बिंदु है- युग के यथार्थ की प्रतीति। तत्कालीन जन-जीवन की पीड़ा, प्रताड़ना और दीन-हीन अवस्था ही उनके रचना स्रोत बने। उनके द्वारा रामकथा को लोकवादी भूमिका में प्रस्तुत करना इस बात का

प्रमाण है कि तुलसी केवल भक्तिजन्य शांति एवं संतोष में ही जीवन की इतिश्री नहीं समझते थे, वरन् वे संघर्ष और द्वन्द्व के बीच लड़खड़ाती जाति को प्रवृत्ति परायण बनाकर विघटन और बिखराव के समय भी सार्थक-जीवन का मार्ग सुझाना चाहते थे। धार्मिक दृष्टि से सगुण-निर्गुण ब्रह्म संबंधी मान्यता की वैज्ञानिक मीमांसा करते हुए वे कहते है कि-

जाने बिनु न होहिं परतीति, बिन प्रतीति होई नहिं प्रीति।

तुलसी ने सगुण और निर्गुण के बीच सेतु का कार्य करते हुए मध्यकालीन प्रवृत्ति और निवृत्ति के विवाद के बीच भक्ति के मार्ग को प्रशस्त किया।

राम जिन सामाजिक मूल्यों के सर्वोत्तम प्रतीक हैं। वह है उच्चतर मूल्यों के लिए निरंतर संघर्षरत। तभी राम-राम हैं। संघर्ष भरे कर्म के बिना मनुष्यता का इतिहास नहीं बनता। राम ने सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए निरंतर संघर्ष किया। निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' कविता में राम की पीड़ा को आधुनिक संदर्भों में जाँचा-परखा है—

अन्याय जिधर है उधर शक्ति। कहते छल छल।
हो गए नयन कुछ बूँद पुनः ढलके दृगजल।
धिक् जीवन जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।[7]

युगीन मूल्य और संस्कारहीनता के दायित्वबोध को स्वीकार कर तुलसी ने राम को शक्ति, शील और सौंदर्य के रूप में स्थापित किया। जिनकी लोकमंगल की भावना हमें सदा प्रेरित करती रहेगी। तुलसी के राम मध्यकालीन सामंती भोग विलासी मूल्यों को चुनौती देते हैं। तुलसीदास ने मनु-शतरूपा के चरित्र के माध्यम से बताया कि महाराज मनु को समस्त भौतिक सुखों का भोग करने के पश्चात् यही आत्मानुभूति हुई कि वास्तव में यह सांसारिक भौतिक संसाधन क्षणभंगुर हैं। उन्होंने स्वयं कहा है कि-

होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथेपन।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु॥
बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा।
तीरथ वर नैमिष विख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता॥
बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा। तहँ हियँ हरषि चलेउ मनु राजा।
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा। ग्यान भगति जनु धरे शरीरा॥[8]

सामान्य त्याग से ही ज्ञान एवं भक्ति का दुर्लभ स्वरूप प्राप्त हो सकता है। मनुष्य ज्यों-ज्यों भौतिक सुखों का त्याग करेगा उसे शांति मिलती जायेगी। दुःखद पक्ष यह है कि हम भौतिक सुख के पीछे मृगतृष्णा की भाँति भाग रहे हैं। पाश्चात्य देश के युवक हमारी आध्यात्मिक संस्कृति की गुहार लगा रहे हैं। उनके पास सारे भौतिक सुख-संसाधन होते हुए भी कहीं रिक्तता की अनुभूति कर रहे हैं। इनके प्रभाव के कारण एक गम्भीर समस्या उत्पन्न हो गई है। डॉ. रोहिताश्व के शब्दों में कहें तो-

वे आयेंगे
इतिहास को रौंदकर
अपने कदमों से ...
इंटरनेट की राह से
उपग्रह के चैनल से
वचनों से, मुस्कानों से ...

*

वे आ रहे हैं। हमारी भाषा को रौंदकर
संगीत को झुलसाकर
हमारी धरती-धारित्री को कुचलकर
एक नया इतिहास बनाने के लिए ...
इक्कीसवीं सदी में ले जाने के लिए।[9]

तुलसी की नारी एवं दलित संबंधी दृष्टि को लेकर उन पर तरह-तरह के आरोप लगाये जाते हैं। वस्तुतः उनके कथन की मीमांसा प्रसंगों के अनुकूल करनी चाहिए। विश्वनाथ त्रिपाठी का मानना है कि 'तुलसी के विषय में जो प्रामाणिक, अर्द्ध प्रामाणिक किंवदंतियाँ और आलेख मिलते हैं, उनसे ज्ञात होता है कि वे कई मुस्लिम और अवर्ण व्यक्तियों के अभिन्न मित्र थे। उनकी मित्र मंडली में पासी, चमार, अहीर, धाढ़ी, जुलाहा केवट सभी जातियों के लोग थे। कहा जाता है कि उन्होंने काशी में जो रामलीला शुरू कराई थी उसमें रामकथा के शबरी, केवट जैसे अवर्ण पात्रों का अभिनय उसी जाति के लोग करते थे।'[10] 'तुलसी के राम के भी सबसे निकट के लोग राजकुमार एवं सामंत नहीं है, बल्कि वन के मार्ग में मिलने वाले ग्रामीणजन, केवट, शबरी, आदिवासी कोल, किरात, भील, वानर भालू और पक्षियों में सबसे नीच समझे जाने वाले गिद्धराज और काग भुशुण्डि हैं। जाम्बवंत

राम के सलाहकार हैं। राम के संघर्षमय जीवन से प्रभावित आधुनिक कवि निराला 'राम की शक्तिपूजा' कविता में अपने संघर्षमय जीवन की तलाश करते हैं। इस कविता में राम मुसीबत के समय जाम्बवंत की सलाह मानते हैं।

आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर,
शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन,
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनंदन।[11]

तुलसी के सम्पूर्ण साहित्य में मनुष्य की समानता (कुछ अपवाद को छोड़कर) सर्वोपरि है। वे जन्म से नहीं भक्ति और कर्म से मनुष्य को श्रेष्ठ मानते है।

जाति-पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल वारिद देखिऊ जैसा।।[12]

तुलसी की भक्ति भावना की अपनी बनावट थी। जिसमें वे शास्त्रों का अनुकरण कर बहुत कुछ युगीन संदर्भो के अनुकूल जोड़कर प्रस्तुत करते हैं।

आठवं जथा लाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना।।[11]

भक्ति के लिए न योग की आवश्यकता है, न जप, तप अथवा उपवास की। वाणी की सरलता, मन की निष्कपटता, और यथा लाभ संतोष यही गोस्वामी की भक्ति के तीन आधार हैं। जिसकी कि आज के युग में अत्यधिक आवश्यकता है। क्योंकि इन तीनों का समाज से लोप होता जा रहा है। यही कारण है कि आपस में दूरियाँ बढ़ रही हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का विचार है कि 'तुलसीदास के काव्यों में उनका निरीह भक्त रूप बहुत स्पष्ट हुआ है, पर वे समाज सुधारक, लोकनायक, कवि, पंडित और भविष्यद्रष्टा भी थे। यह निर्णय करना कठिन है कि इनमें से उनका कौन सा रूप अधिक आकर्षक था और अधिक प्रभावशाली था। इसी सन्तुलित प्रतिभा ने उत्तर भारत को वह महान साहित्य दिया जो दुनिया के इतिहास में अपना प्रतिद्वन्दी नहीं जानता।'[13]

तुलसी ने अपनी भक्ति के माध्यम से कर्मयोग की शिक्षा देते हुए जिन मानवीय मूल्यों की स्थापना की है, वे इक्कीसवीं सदी में कितने प्रासंगिक है। यह कहना मुश्किल है। उनके राम जिस शौर्य, धर्म, बल, विवेक, दम, परोपकार, क्षमा, दया, समता, वैराग्य, संतोष, दान, बुद्धि, श्रेष्ठ विज्ञान, निर्मल स्थिर मन, अहिंसा और नियम आदि से रथ का निर्माण करते हैं। वे आज पड़ोसी देशों के साथ कितने सार्थक हो रहे हैं? फिर भी हम इसके महत्व को अस्वीकार नहीं कर सकते। ये तो मनुष्य की निधियाँ हैं। इनके अभाव में तो उसकी तुलना मात्र पशु से ही की जा सकती है। आखिरकार गाँधी जी ने तो सत्य-अहिंसा और 'रघुपति राघव राजाराम' के बल पर ही अंग्रेजों का डटकर मुकाबला किया। कश्मीर में युद्ध विराम की घोषणा का फल आँखों के सामने हैं। प्रेमशंकर जी का मानना है कि 'तुलसी के राम जिन सामाजिक मूल्यों के प्रतीक हैं, उनकी कुछ आदर्शवादी रेखाएँ हो सकती हैं, पर वे यथार्थ विरहित नही है।'[14]

यह ठीक है कि पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण पर भारत में पारिवारिक एवं सामाजिक मूल्य छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। किंतु इसके दुष्परिणामों से आँखें मूँद लेना ठीक नहीं है। अब धीरे-धीरे इसके महत्व का आभास लोगों को हो रहा है। आज अकेला पड़ता जा रहा इंसान आपस में मिलने पर जल्दी-जल्दी संबंधों को गिनाने लगता है। कहीं न कहीं वह समाज में अपने को अकेला महसूस कर रहा है। अपनी जनशक्ति का प्रदर्शन विभिन्न आयोजनों के माध्यम से किया जा रहा है। तुलसी तो स्वयं के जीवन में पारिवारिक एवं सामाजिक सुखों से वंचित रहे फिर भी इसके महत्व की वकालत करते हैं। इसके पीछे उनका समष्टि का कल्याण निहित है 'सम्पति सब रघुपति कै आहीं' में तुलसी सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत धन का स्वामी किसी एक विशेष व्यक्ति को न मानकर सम्पूर्ण समाज को मानते हैं। लेकिन आज की व्यवस्था में व्यक्तिगत सम्पदा एकत्र करने की होड़ लगी हुई है। घोटाला-हवाला कांड तो चल ही रहा था यहाँ तो पवित्र भावना से खेला जाने वाला खेल भी इसकी चपेट में आ गया। इस प्रकार की परिस्थितियों से तुलसी के विचार ही हमें उबार सकते हैं। सम्पूर्ण लंका का स्वामी बनाने के बाद राम को लगता है कि विभीषण को कुछ दिया ही नहीं। भरत राजभवन में ही वन का व्रत ले लेते हैं। पिता के वचन पालन के लिए राम सम्पूर्ण राज वैभव का परित्याग कर देते हैं। मानस में ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जो कि

आज की भौतिकवादी व्यवस्था में छटपटाती हुई मानव जाति को शांति प्रदान करते हैं। तुलसी की अर्द्धालियाँ क्रोसीन का कार्य कर रही है।

वर्तमान समय में नारी एवं लोकपाल विधेयक की चर्चा खूब हो रही है। लेकिन उस पर अभी तक आम सहमति नहीं बनी। इसकी प्रेरणा हमें तुलसी से लेनी चाहिए क्योंकि वे सम्पूर्ण संसार को ही 'सीय राममय' मानते हैं और सीता को पहला स्थान देते हैं। राधे कृष्ण में भी राधा को प्रथम दर्जा दिया गया है। दु:खद पक्ष है कि भारतीय लोकतंत्र में पिता का स्थान पहले आता है, और माता का बाद में। तुलसी ने मध्यकाल में ही नारी स्वतंत्रता और समानता की जबर्दस्त वकालत की है। पार्वती का विवाह होने पर उनकी माँ मैना विदाई के अवसर पर दु:खी होकर बहुत बेजोड़ बात कहती हैं। वह आज भी सारे संसार के नारी ह्रदय की चीख है। 'कत विधि सृजी नारि जग मांही, पराधीन-सपनेहुँ सुख नाहीं।' डॉ. राममनोहर लोहिया का मत है कि 'नर और नारी का स्नेहमय संबंध बराबरी की नींव पर हो सकता है। ऐसा संबंध कोई समाज अभी तक नहीं जान पाया। सीता और राम में भी पूरी बराबरी का स्नेह नहीं था। समाज के अंतर्गत व्याप्त गैर बराबरी का कण उसमें भी पड़ गया। फिर भी जितना ज्यादा सीता, द्रौपदी और पार्वती इत्यादि को ऊँचे और स्वतंत्र आसन पर बैठाया है, उससे ज्यादा ऊँचा नारी का आसन दुनिया में कहीं और कभी नहीं हुआ।'[15] असमानता विरोधों को जन्म देती है। अपनी क्षमता के अनुसार मनुष्य को अपने कार्य में प्रवृत्त रहना चाहिए।

भौतिक उपलब्धियों एवं वैज्ञानिक संसाधनों से ही मानवता की रक्षा नहीं हो सकती। इसके लिए मानवीय मूल्यों का होना भी जरूरी है। ये मूल्य समाज एवं राष्ट्र को आधार प्रदान करते है। इसी के आधार पर तुलसी के राम कहते हैं-

जो अनीति कछु भाखौ भाई, तो मोहि बरजौ भय बिसराई।

आज राजनीति को धर्म से जोड़कर सत्ता प्राप्ति का लक्ष्य माना जा रहा है। इस संबंध में डॉ. राममनोहर लोहिया ने बहुत ही गम्भीर विचार व्यक्त किया है। 'धर्म और राजनीति के अविवेकी मिलन से दोनों भ्रष्ट होते हैं। किसी एक धर्म को, किसी एक राजनीति से कभी नहीं मिलना चाहिए। इसी से साम्प्रदायिक कट्टरता जनमती है। धर्म और राजनीति को अलग रखने का सबसे बड़ा मतलब यही है कि साम्प्रदायिक मिलन और कट्टरता से बचें। एक और मतलब है कि राजनीति के दण्ड और धर्म की व्यवस्थाओं को अलग रखना चाहिए। नहीं तो, दकियानूसी बढ़ सकती है और अत्याचार भी। इतना ध्यान में रखते हुए, फिर भी जरूरी है कि धर्म और राजनीति एक दूसरे से सम्पर्क न तोड़े, मर्यादा निभाते हुए। मैं साफ देख रहा हूँ कि राजनीति के क्षेत्र में धर्म ने जाने-अनजाने दकियानूसी, प्रतिक्रिया, गुलामी और अर्ध-मृत्यु को बढ़ावा दिया है।'[16]

मानस की रचना करते समय तुलसी के मन में धर्म, दर्शन, भक्ति और राजनीति अनेक विषय रहे हैं। जिनका उन्होंने स्थान-स्थान पर संकेत किया है और साथ ही आपस में समन्वय भी। तुलसी की समन्वयवादी विचारधारा से प्रभावित होकर ही गाँधी जी ने राम-राज्य की कल्पना की थी। तुलसी की कविता अपने देश और काल के यथार्थ की कविता है। राजा और प्रजा संबंधी उनके विचार इस प्रकार हैं-

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

महान साहित्य अपने युग के लिए ही सार्थक नहीं, वरन् भविष्य के लिए भी सार्थक होता है। तुलसी ने अपने साहित्य के जिस विशाल फलक पर युगीन और तत्वबोध को मिश्रितकर जिस सहज सम्प्रेषणीयता से व्यक्त किया है, उसमें आज की समस्याओं और अंतः संघर्षों की झलक दिखाई देती है। तुलसी निश्चित रूप से मानवतावादी विचारक एवं महाकवि थे। जिनके साहित्य में सर्वत्र लोकमंगल की अनुगूँज सुनाई देती है। इक्कीसवीं सदी में तुलसी साहित्य की जीवंतता ही उनका सबसे बड़ा प्रदेय है।

— रीडर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गोवा विश्वविद्यालय, गोवा-403206

संदर्भ-सूची

1. अक्षरा अंक- 39, जनवरी-मार्च 98, पृ. 48।
2. नई सहस्त्राब्दी, आज के प्रश्न और संभावित समाधान- हरिकृष्ण निगम- पृष्ठ- 12।
3. वर्णमाला-प्रवेशांक-अप्रैल- 2000 पृष्ठ- 25।
4. भारतमाता, धरतीमाता- डॉ. राममनोहर लोहिया- पृष्ठ- 9।
5. वही- पृष्ठ- 10।
6. रामचरितमानस पृष्ठ- 443।
7. रागविराग- संपादक रामविलास शर्मा पृष्ठ- 98।
8. रामचरितमानस- पृष्ठ- 154।
9. अक्षरा।
10. लोकवादी तुलसीदास- विश्वनाथ त्रिपाठी- पृष्ठ- 91।
11. रागविराग- सं. रामविलास शर्मा- पृष्ठ- 100।
12. रामचरितमानस- पृष्ठ- 639।
13. दीप ज्योति तुलसी विशेषांक- पृष्ठ- 14।
14. भक्तिकाव्य का समाजशास्त्र- पृष्ठ- 117।
15. भारतमाता, धरतीमाता- पृष्ठ- 11।
16. वही पृष्ठ- 16।